गुरिल्ला न्यूज़ नेटवर्कः डिजिटल डॉक्यूमेंट्री का नया आयाम

गीयर्ट लोविंक

न्यूज़ नेटवर्क की राजनीतिक वीडियो फ़िल्में कड़ी मेहनत का काम है। बात इन फ़िल्मों की विषयवस्तु के बारे में की जाए या सौंदर्यशास्त्र या वितरण की गुरिल्ला नेटवर्क की, फ़िल्में हर महकमें में अपनी अलग छाप छोड़ती हैं। निर्माण और प्रस्तुति की शैली के लिहाज़ से इन फ़िल्मों को पंचरंगी कहना शायद ग़लत नहीं होगा। गुरिल्ला न्यूज़ नेटवर्क के लिए आज मुल्कों की सरहदें कोई रुकावट नहीं है। वह दुनिया में हर कहीं पहुँच चुका है। और उसका यह आग़ाज़ इतना सलीके से हुआ है कि भविष्य का टैक्टिकल मीडिया आज ही पूरी तरह नमूदार होता दिखने लगा है। जीएनएन पर आप अतीन्द्रीय मस्ती और चोम्स्की को एक साथ विचरते देख सकते हैं। राजनीतिक डॉक्यूमेंट्री वीडियो और खोजी पत्रकारिता की परंपराओं को अक्षुण्ण रखते हुए जीएनएन क्लासिक फ़ुटेज का टेलीविज़न के फ़ॉरमेट में नए और विलक्षण ढंग से इस्तेमाल करता है। जीएनएन पर सारा काम हाई पल्स वीडियो क्लिप्स के रूप में संपादित किया जाता है। इस नेटवर्क की फ़िल्में तकनीक और सामग्री के लिहाज़ से अंतरक्रियात्मक कही जा सकती हैं। उन्हें बनाया ही इस हिसाब से जाता है ताकि उन्हें वीएचएस, डीवीडी, टेलीविज़न या वेब हर कहीं देखा जा सके। वास्तव में, वेबसाइट को जीएनएन के काम-काज का प्रमुख ढंग कहा जा सकता है। यह महज़ एक वीडियो पॉर्टल की तरह ही काम नहीं करता बल्कि रोज़मर्रा की ख़बरों के मंच के तौर पर काम करता है। जीएनएन की विषयवस्तु पर्यावरण, आतंकवाद विरोधी युद्ध से लेकर जासूसी तक फैली है। एस-11 रिडक्स, मेरी सबसे पसंदीदा फ़िल्म है। अमेरीकी ख़बरों के फ़ुटेज को बड़े ही मस्त अंदाज़ में तोड़-फोड़ कर बनायी गयी इस फ़िल्म में अमेरीका द्वारा अफ़ग़ानिस्तान अभियान के पक्ष में बजाए गए ढोल की पोल खोली गयी है।

स्टीफ़न मार्शल कनाडाई हैं। वे लिखते हैं और वीडियो फ़िल्में भी बनाते हैं। वे 1995 से ही डेस्कटॉप वीडियो और हैंडीकैम क्रांति के हमसफ़र रहे हैं। मार्शल ने इस दौरान 'चैनल ज़ीरो' नामक एक भूमिगत वीडियो पत्रिका भी चलायी। इस पत्रिका ने 'एचएमवी', 'टॉवर', और 'वर्जिन' जैसे स्टोर्स के माध्यम से अच्छी ख़ासी पहचान बनायी। 'चैनल ज़ीरो' के बंद होने के बाद उन्होनें न्यूयॉर्क और टोरोंटो में डीजे के तौर पर काम किया। सन् 2000 की शुरुआत में उन्होंने 'एमटीवी' के जोश-शोर के साथ मिलकर जीएनएन को खड़ा किया। जीएनएन यानी गुरिल्ला न्यूज़ नेटवर्क एक ऐसे दौर में शुरू

किया गया जब डॉटकॉम क्रांति की चारों ओर धूम मची हुई थी। इस माहौल में 'जीएनएन' ने एक धमाकेदार और अर्थपूर्ण मल्टीमीडिया साइट के रूप में पहचान क़ायम की। इस बीच गुरिल्ला नेटवर्क ने सियरा लियोन के हीरा-व्यापार और नशीली दवाओं के व्यापार में सीआइए की मिलीभगत के बारे में दो वीडियो फ़िल्में तैयार कीं। बाद में गुरिल्ला नेटवर्क का एक अन्य 'एल्ट न्यूज़' उद्यम के साथ विलय हो गया और उसके साथ कई और धाँसू लोग आ मिले। स्टीफ़न मार्शल से मेरी मुलाक़ात मार्च 2003 में हुई। अवसर था शिकागो का न्यू मीडिया फ़ेस्टीवल। बस इसके बाद हम दोनों ने यह ठान ली कि एक दूसरे की खोज-ख़बर लेते रहेंगे। जीएनएन के राजनीतिक तेवरों को देखते हुए मुझे लगा कि इंटरव्यू की इब्तदा कैमकॉर्डर और डिजिटल वीडियो सौंदर्यशास्त्र जैसे पहलुओं से की जाए तो ज़्यादा बेहतर रहेगा। बाक़ी मैं क्या कर पाया हूँ इसका फ़ैसला आप पर छोड़ता हूँ।

गीयर्ट लोविंक: अपनी संपादन तकनीक के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे? ऐसा लगता है जैसे आपकी एडिटिंग के पीछे संगीत की एक लय-सी काम करती है। लेकिन आपकी वीडियो का कथ्य इस शैली से जुदा दिखता है। इस तनाव को आप कैसे सुलझाते हैं?

स्टीफ़न मार्शल: अपने बारे में मैं एक बात साफ़ कर दूँ कि वीडियो निर्देशक होने के साथ-साथ मैं डीजेइंग के काम को भी गंभीरता से लेता रहा हूँ। डीजेइंग के क्षेत्र में साउंड और बीट्स की सीधी एडिटिंग मुझे हमेशा लुभाती रही है। इन दोनों की कीमियागरी मुझे हमेशा अपनी ओर खींचती रही है। इसलिए जब भी मैं कोई वीडियो बनाता हूँ तो मेरे तईं वह इस काम का विस्तार भर होता है। दृश्यों को मैं अर्थ की एक और तह के रूप में देखता हूँ। मुझे नहीं लगता कि दृश्य साउंड से हर हाल में ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होता है। मेरा मानना है कि जो लोग मीडिया से बदलाव का काम लेना चाहते हैं यानी जो अपने दर्शकों की चेतना को विकसित करना मुख्य काम समझते हैं, उनके लिए मनुष्य की बोध क्षमता का मामला बेहद महत्त्वपूर्ण होता है। मैं समझता हूँ कि दृश्यों की सहज समझदारी को दरकिनार कर के सामाजिक-राजनैतिक मीडिया को मानीख़ेज नहीं बनाया जा सकता। और इस मामले में कहने की ज़रूरत नहीं है कि साउंड की जगह इमेज से पहले है। आदमी सुनता पहले है, देखता उसके बाद है। आप जानते ही हैं कि मनुष्य पहले आवाज़ से परिचित हुआ है न कि 'दृश्य' से। यह एक बहुत बुनियादी बात है। डीजेइंग के अनुभव के आधार पर मै कह सकता हूँ कि सोनिक फ़्रीक्वेंसी में ख़ास ढंग से अदल-बदल करके श्रोताओं के भीतर अलग-अलग तरह की भावनाएँ पैदा की जा सकती हैं। जैसे ही फ़्रीक्वेंसी बदली जाती है वैसे ही फ़्लोर पर नाचने वालों के शरीर में अलग तरह की थिरकन होने लगती है। संगीत और आख्यान के रिश्ते को डीजेइंग कैसे प्रभावित करती है, इस बारे में यहाँ हम इतना ही कहेंगें कि डीजेइंग एक ऐसी कला है जो किसी साउंड से परहेज़ नहीं करती। उसका काम एक ऐसा प्रभाव पैदा करना है ताकि लोग फ़्लोर न छोड़ सके।

'जीएनएन' के लिए काम करते हुए मेरी कोशिश हमेशा यह रहती है कि इलेक्ट्रॉनिक संगीत की संस्कृति के इन अंदरुनी और अवचेतन पहलुओं को इस ढंग से पेश करूँ कि सामाजिक-राजनीतिक सामग्री के रुखेपन को दिलचस्प बना सकूँ। डॉक्यूमेंट्री फ़िल्म और ख़बरों के कार्यक्रम की लोकप्रियता में लगातार गिरावट आयी है। यह गंभीर चिंता का विषय है। अगर नौजवानों को उन ज़मीनी तथ्यों और आँकड़ो से परिचित नहीं कराया जाता जिनके आधार पर वे समाज के बारे में राय बनाते हैं तो यह समझिए कि व्यवस्था के तख़्तापलट की संभावना धूमिल हो रही है। मैं यह भी समझता हूँ कि अगर एक्टिविस्ट फ़िल्मकार सभी मौजूदा साधनों और सुविधाओं का भरपूर इस्तेमाल नहीं करते तो यह माना जाएगा कि वे मुख्यधारा के प्रसारण तंत्र को चुनौती देने के मामले में गंभीर नहीं हैं। तो जब मैं जीएनएन पर ख़बरों के वीडियो एडिट कर रहा होता हूँ तो मेरी जुस्तजू वैचारिक सामग्री के साथ संगीत को इस तरह मिलाने की रहती है। दरअसल नयी पीढ़ी चीज़ों को इसी तरह चाहती है। यह बात 'नाइकी' को भी पता है और 'कोकाकोला' को भी। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये कंपनियाँ युवा पीढ़ी को

आकर्षित करने के लिए जो विज्ञापन अभियान चलाती हैं उस पर वे ज़बरदस्त ढ़ंग से मेहनत करती हैं। युवाओं का मानस समझने के लिए वे शोध पर ख़ूब ख़र्च करती हैं। एडिटिंग के काम में मैं सारा दारोमदार संगीत पर छोड़ देता हूँ और सब कुछ संगीत के हिसाब से ढालने की कोशिश करता हूँ। असल में जीएनएन के ख़बर वीडियो में हम इसी विचार को लेकर चल रहे थे कि इसे पहले से तैयार और बीट आधारित संगीत मिश्रित राजनीतिक वीडियो बनाया जाए। तो एक बात को लेकर हम शुरू से ही सचेत थे कि हमारा काम आसान नहीं ही होगा क्योंकि हम ऐसी वीडियो नहीं बनाने वाले थे जिनमें पहले पाठ सामग्री की पट्टी दे दी जाती है और बाद में उस पर संगीत चस्पाँ कर दिया जाता है। हमारा इरादा ट्रैक के हिसाब से एडिटिंग करने का था। इसलिए संगीत के ऐसे ट्रैक्स की खोज में मैं हमेशा लगा रहता था जो हमारे वीडियो की सामग्री से मेल खाते हों। डिज़ाइन टेकनीक क्या रखी जाए, कट कहाँ लगाए जाएँ या अपनी बात को किस ढंग से रखा जाए - इन सारे मामलों को मैं संगीत के ट्रैक के लिहाज़ से तय करता था।

मैं एक उदाहरण के ज़रिए अपनी बात समझाना चाहूँगा। जीएनएन के लिए मैंने सबसे पहली वीडियो 'द मोस्ट डेंनजेरस गेम' एडिट की थी। फ़िल्म के लिए मुख्य इंटरव्यू मैंने एक महीने पहले निपटा लिए थे। स्क्रीन का डिज़ाइन मैं सीधा सादा रखना चाहता था। मेरा विचार था कि फ्रेम को दो हिस्सों में इस तरह बाँटा जाए कि शब्द/पाठ का सफ़ेद हिस्सा बीच में आ जाए। कहूँ कि मैं इसे सम्मोहक बनाना चाहता था। इस बारे में हमने मॉन्ट्रियल के एक प्रोड्यूसर मिशेल अकीयामा से उसके ट्रैक का इस्तेमाल करने की अनुमति भी ले ली थी। लेकिन जब मैंने अकीयामा का ट्रैक सुनना शुरू किया तो पूरी योजना ही बदल गयी। अकीयामा का संगीत इतना पुरलुत्फ़ और भावप्रवण था कि हमारी वीडियो का बौद्धिक कथन अनजाने ही उससे तय होने लगा। हमें लगा कि वीडियो का प्रमुख आकर्षण अकीयामा का यह गाना है। और कमाल देखिए कि मैं डॉक्यूमेंट्री के तमाम कट अकीयामा के संगीत से तय करने लगा। आपको यह बहुत अजीब और बेवकूफ़ी की बात लग सकती है लेकिन मैं एक तरह से मजबूर हो गया था। अकीयामा का ट्रैक मेरे लिए सबसे अहम हो गया था। लिहाज़ा मैं वीडियो के शब्द और पाठ को उसी हिसाब से ढालने लगा। बाद में जब लोगों ने यह फ़िल्म देखी तो उनकी पहली प्रतिक्रिया यही थी कि वीडियो का 'संगीत अद्भुत है'। कुछ का कहना था कि 'वीडियो और संगीत का यह संगम अविश्वसनीय है'। ज़ाहिर था कि ख़बर वीडियो के लिए एडिटिंग का यह तरीक़ा हमेशा कारगर नहीं हो सकता था। उसके बाद मैंने डीजे द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले एमपी-थ्री क्लिप्स को आज़माना शुरू किया। इन साउंड लूप्स का प्रयोग मैं आवाज़ के पिच या मूड को उभारने के लिए करता था। आफ़्टरमैथ के लिए पैरिस ने फ़िल्म के हर हिस्से के लिए अलग से ट्रैक तैयार किया। रफ़्तार और टेम्पो का मिलान हमने बाद में स्टूडियो में किया। तो इस तरह हमारा तरीक़ा कोई पूर्व निर्धारित तरीक़ा नहीं है। यह लगातार विकसित हो रहा है।

गीयर्ट : आप अपनी फ़िल्मों में सूचना-ग्राफ़ों का काफी इस्तेमाल करते हैं। इसके पीछे आपकी क्या सोच है? इसकी प्रेरणा आपको कहाँ से मिलती है? इसके पीछे वीडियो कला की प्रेरणा है या डॉक्यूमेंट्री फ़िल्म का प्रभाव? इसके पीछे कम्प्यूटर की दुनिया किस हद तक है?

एसएम: टाइपॉग्राफ़ी और पाठ निर्देशित डिज़ाइन से एक कला के रूप में मेरा सबसे पहला परिचय पीटर ग्रीनवे की फ़िल्म 'द पिलो बुक' से हुआ था। इस फ़िल्म में चीनी चरित्रों के कथन को स्क्रीन पर बेहद ख़ूबसूरती से दिखाया गया है। शब्द को स्क्रीन पर दिखाने की इस शैली से मैं इस क़दर प्रभावित हुआ कि 1997 से लेकर अब तक मैं उस अनुभव को किसी न किसी रुप में दोहराता रहा हूँ। यह फ़िल्म सूचना की दृष्टि से तो एक पड़ाव थी ही, टोमैटो द्वारा अंडरवर्ल्ड पर बनायी गयी वीडियो 'डुबनोबासिनमाइहैडमैन' के डिजाइन को भी एक क़दम आगे ले जाती थी। इन वीडियो से मैं गहरे प्रभावित हुआ हूँ। हाँ, यह बात अलग है कि व्यावहारिक तौर पर मेरे काम के लिए ये वीडियो बहुत

मददगार नहीं रही हैं। दरअसल, मुझे उनमें 'टाइप' और अंडरवर्ल्ड के बीट आधारित ट्रैक का संयोजन ज़्यादा दिलचस्प लगता रहा है।

जीएनएन सूचना के संप्रेषण को सबसे ज़्यादा महत्त्व देता है। हमारा ज़ोर इस बात पर रहता है कि सूचना सही ढंग और तरीक़े से पहुँचे। कई बार इस सूचना को पकड़ने में दिक़्क़त आ सकती है और वीडियो को बार-बार देखना पड़ सकता है। परंतु पूरा ध्यान इस तरफ रहता है कि हम जिस सामाजिक-राजनीतिक जानकारी को बयान करना चाहते हैं वह लोगों तक ठीक ढंग से पहुँचे। इस मामले में मैं चौबीस घंटे वाले ख़बरिया चैनलों का मुरीद हूँ। वे ख़बरों के लिए जिन छोटी-छोटी पट्टियों और गोल घेरों का इस्तेमाल करते हैं वह मुझे बेहद प्रभावशाली लगता है। जनता के सामूहिक मानस में पैठने के लिए शायद इससे बेहतर तरीक़े फ़िलहाल मौजूद नहीं हैं। ये तरीक़े अपने आप में भी प्रयोगधर्मी है। 'चैनल ज़ीरो' के बाद मुझे 'सीएनएन' के चेअरमैन और सीइओ ने अपने साथ काम करने का प्रस्ताव दिया था। बाद में 1997 में 'सीएनएन' को टाइम वार्नर ने ख़रीद लिया था। 'सीएनएन' वाले युवाओं के लिए अलग से एक चैनल बनाने चाहते थे। उन्होंने नेटवर्क के डिज़ाइन का काम मुझे सौंपा। नेटवर्क के डिज़ाइन टेंम्पलेट तैयार करने के लिए हमने डिज़ाइनरों की एक टीम जुटायी। नए डिज़ाइन गढ़ने के लिए हमने अलग तरह के रंगों और पृष्ठभूमि का इस्तेमाल किया। समाचार वाचको के लिए हमने छोटे बॉक्स बनाए। इसके पीछे स्क्रीन पर ख़बरों को ज़्यादा स्पेस देना था। हम स्क्रीन को कुछ ऐसा रूप देना चाहते थे कि उस पर सूचनाएँ सपाट और रूखी न दिखे। यह प्रभाव पैदा करने के लिए हमने ख़ूब मगज़मारी की। अंततः हमने एक ऐसा डिज़ाइन तैयार किया जिसमें ख़बर एक तरफ बोली जाती थी और उसके साथ ही स्क्रीन पर ख़बर के शब्द उभरते रहते थे।

आजकल मैं दिमाग़ी ख़ुराक के लिए पत्रिकाएँ और ऑनलाइन जर्नल्स ख़ूब पढ़ता हूँ। इन दिनों डिज़ाइन के क्षेत्र में नित नवीन चीज़ें घट रही हैं। परंतु इन नए विचारों का इस्तेमाल राजनीतिक और सामाजिक उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए नहीं किया जा रहा है।

गीयर्टः अगर सिद्धांत की बात की जाए तो क्या आप अपनी वीडियो क्लिप्स डीवी कैमरा और कम्प्यूटर या मैक के साथ बना सकते हैं। यानी क्या आप स्टूडियो के बिना काम चला सकते हैं? मीडिया के टैक्टिकल औज़ारों के लिहाज़ से कुछ सालों बाद हम कहाँ खड़े होंगे?

एसएमः मैं जो भी काम करता हूँ उसे पूरी तरह लैपटॉप और फ़ायरवायर केबल पर तैयार किया जा सकता है। हाँ, बड़े प्रॉजेक्ट्स के लिए ज़्यादा ड्राइव स्पेस की ज़रूरत पड़ती है। फिर भी तीनगुणा 60 के गिग ड्राइव से एक पूरी फ़ीचर फ़िल्म बनायी जा सकती है। इसके बाद जिस चीज़ का नंबर आता है वह है सॉफ़्टवेयर। और यहाँ भी किसी भारी तामझाम की ज़रूरत नहीं पड़ती। फ़ाइनल कट प्रो जैसे एक अच्छे डेस्कटॉप एडिटर और फ़ोटोशॉप या आफ़्टर इफ़ेक्ट्स जैसे आम डिज़ाइन औज़ारों से भी ख़ूब काम चलाया जा सकता है। अब टैक्टिकल मीडिया के औज़ारों को कहीं भी ले जाया जा सकता है। मुझे याद है आफ़्टरमैथ पर काम करने के दौरान मुझे समूचे अमरीका में जगह-जगह इंटरव्यू करने थे। इसलिए सड़क पर चलते समय मैं हमेशा अपने पास वीडियो रखता था। यह एक बेहद बड़ा डिज़ाइन प्रॉजेक्ट था जिसके कुछ हिस्से तो इतने बड़े थे कि उनमें वीडियो की सोलह-सोलह परतें खप जाती थीं। एक बार शिकागो जाते समय मैंने हवाई जहाज़ में बैठे-बैठे 9/11 की घटना का डिज़ाइन तैयार कर डाला था। इस सीक्वेंस में अपहृत हवाई जहाज़ को रोक पाने में सेना की विफलता को दर्शाया गया था। इसके लिए मैंने हवाई जहाज़ों के चित्र काट कर जमा कर लिए थे। मैं पेंटागन पर हुए हमले का एनीमेशन तैयार करने की कोशिश कर रहा था। इसे डिज़ाइन करना सचमुच कसाले का काम था। इतने जटिल डिज़ाइन से मेरा आज तक वास्ता नहीं पड़ा है। मेरे पीछे कुछ यात्री बैठे थे और वे देख रहे थे कि मैं क्या कर रहा हूँ। लेकिन मुझे इस चीज़ का अहसास नहीं था। तभी एक यात्री मेरे पास आया

और उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं वीडियो गेम खेल रहा हूँ। मैं सचमुच अपनी हँसी नहीं रोक पाया। यह बात सच भी है कि भले कुछ लोगों को मेरा काम बेहद पेंचदार मालूम पड़ता हो, मेरे लिए तो वह वीडियो गेम जैसा ही कुछ बन कर रह गया है।

अभी हाल ही में मैं इराक़ गया था। जाने से पहले कुछ पत्रकारों ने मुझे सलाह दी थी कि अपने साथ ज़्यादा साज़-ओ-सामान न लेकर जाऊँ क्योंकि जॉर्डन के बाद होने वाले सफ़र के दौरान वीडियो औज़ार ठप्प पड़ सकते थे। इसलिए हमने अपने साथ बस कैमरे और फ़्लैक जैकेटे ही ली और लैपटॉप पीछे छोड़ दिए। लेकिन जब वहाँ पहुँचे तो अहसास हुआ कि सारा सामान ले ही आते तो बेहतर होता। वहाँ लूटपाट का कोई ख़तरा नहीं था। और होटल के कमरे से एक क़दम बाहर रखे बग़ैर मैं बग़दाद के हालात-ए-हाज़रा पर वीडियो तैयार कर सकता था। होटल के निचले तल पर स्थित साइबर कैफ़े से ये वीडियो मज़े में अपलोड भी की जा सकती थी। तो टैक्टिकल मीडिया के लिहाज़ से यहाँ सब सामग्री मौजूद है। बस हमें ज़रूरत है तो एक ऐसी आधाभूत संरचना बनाने की जो इन क्लिपों को दूर-दूर पहुँचा सके। हमें अपना प्रसारण तंत्र खड़ा करने की कोशिश करनी चाहिए। इस इकहरी और आत्मकेंद्रित संस्कृति से मुक़ाबला करने का यही तरीक़ा है।

गीयर्ट : बहुत से लोग आपकी वीडियो अप्रोच को लोक-लुभावनवादी बताते है। उनका कहना यह भी है कि वामपंथी मीडिया के कुछ हलक़ों की तरह आपको भी हर घटना के पीछे षड़यंत्र सूंघने का रोग है। इन आरोपों का आपके पास क्या जवाब है? खोजी पत्रकारिता और षड़यंत्र की विभाजक रेखा कहाँ शुरू होती है? इसे आप आलोचना मानते हैं या ईर्ष्या? क्योंकि कहने की ज़रूरत नहीं है कि जीएनएन चलताऊ क़िस्म के सौंदर्यशास्त्र और गंभीर सामग्री के बीच बेहतरीन संगम बिठाने में कामयाब रहा है।

एसएम: लोक-लुभावनवादी सुनना मुझे दिलचस्प लगा। अभी कुछ दिन पहले मैं नेओमी क्लाइन से बात कर रहा था कि अमेरीकी और यूरोपीय ब्रॉडकास्टर के बीच क्या क्या फ़र्क़ है। मैं कह रहा था कि इराक़ की यात्रा और दबाकर बीबीसी देखने के बाद मुझे लगता है कि बीबीसी ने युद्ध को कहीं-कहीं बहुत अच्छे ढंग से कवर किया है। इससे भी ज़्यादा प्रभावित मैं पूंजीवाद के सद्गुणों की कलई उतारने वाली एकशृंखला से था। लेकिन नेओमी को मेरी बात जँच नहीं रही थी। उनका कहना था कि बीबीसी बौद्धिक दृष्टि से निस्संदेह औरों से बेहतर है और उसमें अपने अर्थतंत्र की ख़ामियों उजागर करने का माद्दा है। लेकिन वहाँ भी ख़बरों की प्रस्तुति में एक अभिजन ग्रंथि का काम करती है। नेओमी ने एक उदाहरण देते हुए कहा कि बोलीविया या वेनेज़ुएला जैसे देशों में जब भी जन विद्रोह या क्रांतिकारी उभार पैदा होते हैं तो बीबीसी पर उन्हें पॉप्युलिस्ट विद्रोह कहकर संबोधित किया जाता है। बीबीसी पर इन जनआंदोलनों को जिस ढंग से पॉप्युलिस्ट कहा जाता है उससे लगता है जैसे ये आंदोलन सैनिक राजनीतिक तानाशाही के ख़िलाफ़ बग़ावत न होकर जनता की एक बेमक़सद हड़बोंग हो। हाल ही में बीबीसी ने बोलीविया की घटनाओं को जिस तरह से पेश किया है उससे ज़ाहिर होता है कि नेओमी की राय एकदम दुरुस्त है।

बीबीसी या किसी भी अन्य संगठन की तरह वामपंथी खेमे की डोर भी एक अभिजन के हाथ में रहती है। और इस वामपंथी नेतृत्व की एक ख़ासियत यह रही है कि वह किसी भी असहज लगती बात को गंभीरता से लेने के बजाय उसे 'षड्यंत्र' कहकर ख़ारिज कर देता है। नोम चोम्सकी और चिप बर्लेट जैसे विद्वान उन लोगों का उपहास उड़ाने से बाज़ नहीं आते जो अलग-थलग पड़े सूत्रों को जोड़कर एक बड़ी तस्वीर बनाने की कोशिश करते हैं और जनता को यह बताने की कोशिश करते हैं कि सत्ता अपना मक़सद हासिल करने के लिए क्या-क्या दाँव-पेंच लड़ाती है। मुझे लगता है कि वामपंथी अभिजन की यह एक भारी दिक़्क़त है। और यह एक बड़ा कारण है कि नयी पीढ़ी में इन लोगों का कोई नाम

लेवा नहीं है। ये सब लोग अपनी सोच और बौद्धिक जिज्ञासा के दायरे को बढ़ाना नहीं चाहते। संस्थाओं के परिसर से बाहर पैदा हुई आलोचना को ये लोग कोई भाव नहीं देते। ज़रा सोचिए, अगर अरस्तू ने आकाशीय वृत्तों, न्यूटन ने गुरूत्व बल के नियमों और आइंसटीन ने सापेक्षता के बारे में विचार न किया होता या और सटीक ढ़ग से कहें तो अगर वुडवॉर्ड और बर्न्सटाइन वाटरगेट कांड को गहराई में जाकर न खंगालते तो कल्पना कीजिए कि ये दुनिया कैसी होती। इन तमाम लोगों के पास एक वक़्त सिर्फ़ विचार था। इस विचार को पुष्ट करने के लिए कोई तथ्य नहीं था। यानी वे एक समय सिर्फ़ हवा में तलवारें भाँज रहे थे। लेकिन इन लोगों ने समाज को चिंतन की संरचानात्मक प्रस्थापना के घटाटोप से बाहर निकाल कर उसके सामने खुद को आँकने की एक नयी कसौटी रखी। मैं पूरी तरह मानता हूँ कि अनुसंधान और आलोचना के किसी भी क्षेत्र में वैज्ञानिक साहस या उद्यम की ख़ास जगह होती है और यह भी सही है कि हम ज्ञान की एक मंज़िल से दूसरी मंज़िल तक इसी तरह पहुँचते हैं। लेकिन फ़िलहाल इन विद्वानों का यह रवैया हमारे लिए थोड़ा नुक़सानदेह है। जटिल और मुश्किल दीखती घटनाओं को समझने के लिए जब हम एक ख़ाका-सा तैयार करते हैं तो ये महानुभाव उसे हिक़ारत से एक तरफ खिसका देते हैं।

जहाँ तक जीएनएन के बारे में पूछे गए सवाल का मामला है, मैं स्पष्ट कर दूँ कि हमारे यहाँ घटनाओं के पीछे षड्यंत्र सूंघने की मानसिकता हावी नहीं है। हमारा इस प्रवृत्ति में कोई यक़ीन नहीं है। हम स्टोरी और वीडियो तैयार करते समय पत्रकारिता के स्थापित मानकों का पालन करते हैं और उन्हें पूरी जाँच परख के बाद ही पाठकों के सामने लाते हैं। हम पर आज तक कोई ग़लत सूचना फैलाने का आरोप नहीं लगा पाया है। हॉ, 'आफ़्टरमैथ: अनआनसर्ड क्वेशचंस फ्रॉम 9/11' के बारे में यह बात कही जा सकती है कि उसमें हमने नौ ऐसे अलग-अलग लोगों के नज़रिए से घटनाओं को देखा है जो इस घटना के पीछे सोची-समझी चाल देखते हैं। यह बात बिल्कुल ठीक है कि इस फ़िल्म में हमने कुछ ऐसे लोगों के बयान भी शामिल किए हैं जो यह मानते है कि 9/11 की घटना को अमेरिका की एक खुफिया एजेंसी ने अलक़ायदा से मिलकर अंजाम दिया था। लेकिन फ़िल्म में हमने साथ ही अमेरिका के एक महत्त्वपूर्ण एटॉर्नी की राय को भी रखा था और वे इस घटना के पीछे कुल षडयंत्र यह देख रहे थे कि एअर लाइंस ने यात्रियों की सुरक्षा का उचित प्रबंध नहीं किया था। इसी तरह नागरिक अधिकारों से जुड़े एक अन्य एटॉर्नी की चिंता यह थी कि यूएस पेट्रियॅट ऐक्ट का अमेरीकी समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा। तो, फ़िल्म में हमने विभिन्न लोगों के मत सामने रखे थे। और यह बात मैं ज़ोर देकर कहना चाहूँगा कि तथ्य की दृष्टि से एक भी मत ग़लत नहीं था। यह बात नॉर्थवुड दस्तावेज़ पर भी उतनी ही फ़िट बैठती है। यह दस्तावेज़ ज्वाइंट चीफ़ ऑफ़ स्टाफ़ के एक पूर्व जनरल ने तैयार किया था और इसमें अमेरीकी नागरिकों पर नियोजित रूप से हमला करने की बात कही गयी थी ताकि क्यूबा के ख़िलाफ़ युद्ध छेड़ा जा सके।

असल में दिक़्क़त यह है कि जिन लोगों को ये तथ्य माफ़िक नहीं पड़ते वही हम पर हर घटना के पीछे षड़यंत्र ढूंढने का आरोप लगाते फिरते हैं। 1996 में जब गेरी वेब ने अपने एक लेख में यह भंडा फोड़ा था कि निकारागुआ के दक्षिणपंथी कोन्ट्रा विद्रोहियों को सहायता पहुँचाने के लिए सीआइए ने नशीली दवाइयों के व्यापार का सहारा लिया था तो उस पर षड्यंत्र का सिद्धांतकार होने का आरोप लगाया गया था। लेकिन आज उस रपट को ऐतिहासिक तथ्य माना जाता है। आपको यह जानकर अच्छा लगेगा कि सनडेन्स में हमारी फ़िल्म 'क्रैक द सीआइए' को पुरस्कृत भी किया गया था जबकि मज़ेदार बात यह है कि इस समूची फ़िल्म में सिर्फ़ ग्राफ़ और बीट का इस्तेमाल किया गया था। औपचारिक अर्थो में यह फ़िल्म थी भी नहीं। तो हस्बे-मामूल ये कि है कि आज की युवा पीढ़ी कुछ ऐसे सवालों के जवाब ढूंढ़ना चाहती है जो अभिजन वामपंथियों की बौद्धिक सिद्धांतबाजी में नहीं खप पाते। इन नकचढ़े वामपंथियों की दिक़्क़त यह है कि व्यवस्था को बदलने के लिए वे अपने बौद्धिक सिद्धांत के

अहाते से बाहर नहीं निकलना चाहते। बात बहुत साफ है- जनता किसी के परिवर्तनकामी कार्यक्रम में तब तक शामिल नहीं होती जब तक उसे ख़ुद यक़ीन नहीं हो जाता कि चीज़ें हद से बाहर जा चुकी हैं। दरअसल, जनता सत्ता के ग़लत कामों और जुर्म के ठोस सुबूत चाहती है। बारीक बीनी में उसका यक़ीन नहीं होता। ऊँचे दर्जे की बौद्धिक कताई उसकी समझ से परे होती है। वह चीज़ों को मोटे हर्फ़ों में समझना चाहती है। ऐसे में हम दो काम कर सकते हैं। या तो हम अपने बौद्धिक दर्प में जनता को समझ आ सकने वाली बात को लोकलुभावनवादी कहकर खारिज कर दें या ऐडवरटाइज़िंग और म्यूज़िक टेलीविज़न से सबक़ लेकर अपनी बात को ऐसे पुरकशिश अंदाज़ में पेश करें कि हमारा कथ्य सीधे जनता के ज़हन तक पहुँच जाए। जीएनएन का कुल मक़सद है मीडिया को हथियार की तरह इस्तेमाल करना। हम ऐसे तरीक़े गढ़ना चाहते हैं जिससे कि सत्ता के षड्यंत्र और पेचोंखम सीधे-सीधे समझ में आ सके। अब अगर सीएनएन के आलोचक अमरीकी अभिजन समूहों के ख़ैरख़्वाह बनकर हमारे मंतव्यों और इरादों पर सवाल उठाते हैं मुझे पूछना होगा कि साहब पहले आप बताएँ कि आपके इरादे क्या हैं? फ़िलहाल तो ऐसे लोग कामयाब नहीं हो पा रहे हैं।

अमेरिकी की राजनीति में वामपंथ का कोई नामलेवा नहीं है। आख़िर वे इस सच्चाई को खुली आँखों से क्यों नहीं देखना चाहते। वे क्यों नहीं समझना चाहते कि चीज़ें उनके हिसाब से ढल नहीं पा रहीं हैं। दरअसल, सत्ता संरचना चाहे वाम की हो या दक्षिणपंथियों की उसे उखाड़ना पहली ज़रूरत है। और यह काम तभी हो पाएगा जब लोगों के मन में सत्ता के इन सटोरियों के प्रति अविश्वास की भावना गहराने लगेगी। अब जहाँ तक बात ईर्ष्या की है। मैं शुरू से ही डिज़ायनर होने की तोहमत झेलता रहा हूँ। हाँ, यह अलग बात है कि मेरी शैली बच्चों में हमेशा हिट रही है। मुझे हर मुद्दे पर कुछ ज़्यादा ही बोलने की आदत है इसलिए लोग मुझे थोड़ा-सा सिरफिरा भी समझते हैं। लेकिन यह ऐसी बात तो नहीं है कि लोग मुझसे ईर्ष्या करने लगे। कम से कम मैं तो ऐसा नहीं ही सोचता। दरअसल, मामला यहाँ सत्ता प्रतिष्ठान की मान्यताओं की क़लई उतरने का है। यह बात अभिजन वामपंथियों के बारे में भी पूरी तरह सच है। वे भी राजतंत्र के पैरोकारों की तरह उतने ही पुरातनपंथी और संकीर्ण हैं। आप ज़रा रोज़र ऐल्स के काम पर नज़र डाल कर देंखे। 'फ़ॉक्स चैनल' पर आपने उसका काम देखा है। वहाँ वे पेंटागन की प्रेस विज्ञप्तियों को जनता के ज़हन में उतारने के लिए आला दर्जे के ग्राफ़िक जनेरेटर्स का बख़ूबी इस्तेमाल कर रहे हैं। आपको लगता है हमारे पास इतना वक़्त होता है कि बैकग्राउंड संगीत में ड्रम और बास का इस्तेमाल के बारे में फ़ुर्सत से विचार किया जा सके। आपको मानना पड़ेगा कि यह एक गहमा-गहमी की स्थिति है। हज़ारों लोग इस क्षेत्र में जी-जान से काम में लगे हैं। अब अगर आप ख़ुद को एक मजबूत प्रतिद्वंदी के रूप में स्थापित नहीं करते तो अगली पीढ़ी के ज़हन-ओ-दिमाग़ पर आपकी कोई छवि शेष नहीं रहेगी।

गीयर्ट : मुझे आपके काम में 'टॉकिंग हैड्स' का प्रयोग बहुत दिलचस्प लगता है। कहना पड़ेगा कि म्यूज़िक वीडियो और कम्प्यूटर ग्राफ़िक्स के मौजूदा दौर में आपने टॉकिंग हैड्स को नया रूप ही दे डाला है। क्या आप कभी टॉकिंग हैड्स के बजाय कोई नयी चीज़ लाने की कल्पना करते हैं? संक्षेप में, अगर लिखित या मौखिक शब्द का इस्तेमाल न किया जाए तो स्क्रीन पर प्रतिष्ठान विरोधी बात कैसे कही जा सकती है?

एस एम: प्रसारण का एक जमा-जमाया तरीक़ा है कि स्क्रीन पर आप चीज़ें कैसे दिखा सकते हैं। मुझे नहीं लगता कि इस ढर्रे को किसी ऐसे स्तर तक ले जाया जा सकता है जहाँ दर्शकों को स्क्रीन पर बोल रहे व्यक्ति की बात समझने के लिए उसकी तस्वीर देखने की ज़रूरत न पड़े। हालाँकि, इससे इस बात पर निश्चय ही प्रभाव पड़ेगा कि दर्शक सूचनाओं को कैसे ग्रहण करते हैं। ख़बरों के लिहाज़ से बात की जाए तो स्क्रीन पर टॉकिंग हैड्स दिखाने से ख़बरों की विश्वसनीयता बढ़ती है। दर्शक के रूप में आप जान रहे होते हैं कि जो बात आप सुन रहे हैं वह फ़लाँ आदमी की है। आप इस आदमी

का चेहरा देख सकते हैं और उसकी आँखों में झाँक सकते हैं। कम से कम आप इस व्यक्ति के साथ एक तरह का संबंध तो महसूस करने ही लगते हैं। बुनियादी तौर पर मेरी कोशिश रही है कि इस शैली का भरपूर इस्तेमाल किया जाए। तो, सीधे ढंग से कहूँ तो मैं टॉकिंग हैड्स को नए संदर्भ में इस्तेमाल करने की कोशिश कर रहा हूँ। इसे डॉक्यूमेंट्री के पारंपरिक रूप और मार्केटिंग की आधुनिक तकनीक यानी विचारों और उत्पादों को बेचने की नयी शैली की जुगलबंदी कहा जा सकता है। एक अर्थ में हम अपने बुद्धिजीवियों और विशेषज्ञों के विचारों को उसी धाँसू अंदाज़ में बेच रहे हैं जिस अंदाज़ से कोक का मीठा पानी बेचा जा रहा है। मुझे इस बात का पता नहीं है कि टॉकिंग हैड्स को छोड़ने का विचार कितना कामयाब रहेगा क्योंकि असल में बात यह है कि दर्शक स्क्रीन पर बोल रहे व्यक्ति को देखना चाहते हैं, वे उसकी आवाज़ को सुनना चाहते हैं। स्क्रीन पर कही जा रही बातों को समझने या मानने के लिए लोगों को यह ज़रूरी लगता है। लेकिन जैसा कि आप जानते हैं पिछले दिनों फ़िल्म की एक ऐसी मुकम्मल विधा उभरी है जिसमें टाकिंग हैड्स या मौखिक शब्दों का इस्तेमाल नहीं किया जाता। और इसके बावजूद ये फ़िल्में बड़े-बड़े राजनीतिक वक्तव्य दे डालती हैं। गोडफ्रे रेज़ियों और फ़िलिप ग्लास की फ़िल्म 'त्रयी कात्सी' ने ग़ज़ब की लोकप्रियता हासिल की है। इन लोगों का भाषांतरण कमाल का होता है जिसकी वजह शायद यह है कि वे तस्वीर और संगीत की सार्वभौमिक भाषा में बात करते हैं। आपने डीजे के पीछे मल्टीपल स्क्रीन पर 'कोयानीकात्सी' का नज़ारा कितनी बार लिया है। मैंने तो उसे लगभग सौ बार देखा है। भूमिगत संस्कृति में वह एक सदाबहार चीज़ मानी जाती है। जीएनएन के लिए मैं जो फ़िल्में बना रहा हूँ उसमें मेरा उद्देश्य एक ऐसी 'भाषा' गढ़ने का है जो चुपके से लोगों के मन में पसर सके, जिसे हर कोई समझ सके, जिसे कहीं भी दिखाया जा सके। और इसके बावजूद वह दर्शकों के अंदर चीज़ों के प्रति समझदारी पैदा कर सके।

गीयर्ट: जीएनएन के वितरण तंत्र का मुख्य आधार क्या है? क्या आप अपनी फ़िल्मों को केवल टीवी तक ही महदूद रखना चाहते हैं या आपका इरादा उन्हें दर्शकों के बड़े समूह तक ले जाने का है। मेरा इशारा डीवीडी, नेट के इस्तेमाल और सिनेमाघरों में दिखाए जाने से है।

एस.एम: आदर्शवादी लफ़्फ़ाज़ी में पड़े बिना कहूँ तो मैं इन सारे माध्यमों का इस्तेमाल करना चाहूँगा। जीएनएन की फ़िल्मों के वितरण का मुख्य स्रोत हमारी वेबसाइट है। लेकिन वेबसाइट हमारे विशाल वितरण नेटवर्क का एक स्तर ही है। यह एक ऐसा मंच है जहाँ चार हज़ार से ज़्यादा लोग एक-दूसरे से गुफ़्तगू करते हैं। यह एक खुला मंच है। हमारे लिए यह एक ऐसी जगह है जहाँ हम नए-नए विचार से समृद्ध होते हैं। एक तरह से कहें तो यह वेबसाइट हमें सोच-समझ के नए-नए आयाम खोजने को प्रेरित करती है। हम इस साइट से अपनी बहुत सारी डीवीडी भी बेचते हैं। हमारी आमदनी का स्रोत वे लोग भी हैं जो सामुदायिक टेलीविज़न स्टेशनों पर शो करते हैं। उन लोगों के साथ हमारा समझौता यह होता है कि अपने स्टेशन के लिए एक डीवीडी ख़रीदने के बाद वे उसे जितना चाहे अपने टेलीविज़न पर दिखा और बजा सकते हैं। तो इस तरह हमारा वितरण तंत्र काफी फैला हुआ है। इसके कई स्तर और बिन्दु हैं। अपनी फ़िल्में लोगों तक पहुँचाने के लिए हम सिर्फ़ कॉरपोरेट नेटवर्क का ही इस्तेमाल नहीं करते। इस मामले में टीवी प्रसारण भी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसके अलावा हम इंटरस्कोप और कुछ अन्य छोटी रिकॉर्ड कंपनियों के साथ भी काम करते हैं। इनके माध्यम से हमारे वीडियो जनता के बड़े हिस्से तक पहुँचे हैं। लेकिन जहाँ तक लोकप्रियता के बड़े फ़लक को छूने की बात है वह हमें 'एमीनेम' के लिए बनायी गयी व्हाइट अमेरिका से हासिल हुई। यह वीडियो एमटीवी पर भी दिखायी गयी। एमटीवी के साथ यह हमारा पहला काम था। लेकिन बदक़िस्मती से जिस दिन यह वीडियो लॉन्च किया जाना था उसी दिन 'सीएनएन' ने इस पर एक कार्यक्रम तैयार कर डाला और कोलमबाइन के उत्पीड़ित व्यक्ति के अभिभावकों को ख़रीद लिया और थोड़ी देर के भीतर ही 'सीएनएन' ने स्कूल में हुई इस मार-धाड़ को एक उत्सव के रूप में बदल डाला। सीएनएन पर इस घटना को इस ढंग से

दिखाया गया था मानो यह कोई बहुत अच्छी और प्रेरणादायक चीज़ हो। इसके चलते इंटरस्कोप को अपनी वीडियो एमटीवी से हटानी पड़ी। लगभग साठ लाख लोगों ने इस संबंध में अपनी राय रखी। लेकिन जहाँ तक सफलता और संतुष्टि की बात है वह हमें सबसे ज़्यादा 'आफ़्टरमैथ' के सार्वजनिक प्रदर्शन से मिली। सफलता का यह सिलसिला सैनफ़्रांसिसको के ऐतिहासिक हर्बस्ट थिएटर में आयोजित फ़िल्म के प्रीमियर के साथ शुरू हुआ। सैनफ़्रांसिसको में यह कार्यक्रम 9/11 की घटना से जुड़े स्थानीय एक्टीविस्टों ने आयोजित किया था। इन लोगों ने फ़िल्म के फुल साइज़ रंगीन पोस्टर हज़ारों की संख्या में ख़रीद कर माहौल को रंगीन बना डाला था। फ़िल्म का प्रचार इतना ज़बरदस्त था कि उसे देखने के लिए लगभग डेढ़ हज़ार लोग इकट्ठा हुए जिनमें से पाँच सौ लोगों को जगह न मिलने के कारण वापस जाना पड़ा। जब दूसरे समूहों को इस घटना के बारे में पता चला तो उन्होंने हमें स्थानीय घटनाओं को लेकर और ज़्यादा संख्या में डीवीडी तथा पोस्टर तैयार करने की राय दी। फ़िल्म का प्रदर्शन 9/11 की त्रासदी की दूसरी वर्षगाँठ पर आयोजित किया गया था। कामयाबियों का यह सिलसिला अन्ततः 11 सितम्बर, 2003 को संपन्न हुआ। इस दिन पूरे उत्तरी अमेरिका में जगह-जगह इस फ़िल्म का प्रदर्शन किया गया। बड़े-बड़े थिएटरों से लेकर सार्वजनिक पुस्तकालायों तक में भी यह फ़िल्म दिखायी गयी। लोगों ने इसे अपने घरों में भी देखा। फ़िल्म से उभरने वाले मुद्दों पर औपचारिक रूप से बहस-मुबाहिसा हुआ। डीवीडी तैयार होने के बाद 'आफ़्टरमैथ' का चार भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। इस तरह एक सूक्ष्म स्तर पर देखा जाए तो फ़िल्म के हर प्रदर्शन के साथ हमारी लोकप्रियता और स्वीकार्यता बढ़ती जा रही है। वेबसाइट के अलावा हमारी डीवीडी के वितरण में वीडियो की स्वतंत्र दुकानें भी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। हाँ, यह बात ज़रूर है कि ये डीवीडी बड़ी दुकानों में ही मिलती हैं। आमफ़हम कंपनियाँ इस तरह की फ़िल्मों का स्टॉक नहीं रखती। और इस क्षेत्र में हमें मन-माफ़िक वितरक नहीं मिल सकता। तो, कुल मिलाकर अभी तक हम एक तरह से चलना ही सीख रहे हैं। लेकिन हम अपनी प्रगति और अपनी उपलब्धियों से ख़ुश हैं।

गियर्ट : इराक़ पर बुश के आक्रमण के बाद अक्टूबर 2003 में आप बग़दाद की यात्रा पर गए। आपकी वेबसाइट पर इराक़ के बारे में जो रपटें पढ़ने को मिलीं उनसे सुन्दरता और हिंसा का एक अजीब-सा माहौल उभरता है। मैं समझता हूँ कि इस यात्रा का आपके मन पर गहरा असर पड़ा होगा। इस अनुभव से युद्ध के बारे में आपकी मान्यताएँ किस हद तक बदली हैं। क्या युद्ध विरोधी आंदोलनकारियों को आप अभी भी ठीक समझते हैं। मुझे तो ऐसा ही लगता है। लेकिन मैं यह जानना चाहता हूँ कि वहाँ यथार्थ का वह तीखा रूप आप कैसे देखते हैं। क्या उससे वैश्विक मीडिया के परिदृश्य में कोई आमूल बदलाव आया है?

एस.एम. : इराक़ की यात्रा मेरे लिए एक रुपान्तरकारी घटना है। इसने मेरे अन्तर्मन को बहुत गहरे प्रभावित किया है। और यह प्रभाव सिर्फ़ इराक़ की जनता द्वारा अमरीकी घेरेबंदी के प्रतिरोध से पैदा नहीं हुआ है। यह सिर्फ़ जंग, तबाही और कत्ल-ओ-ग़ारत के अति यथार्थ को नज़दीक से देखने का मामला भर नहीं है। यह एहसास उस यथार्थ को देखने से पैदा हुआ है जो अमरीका और पेंटागन के इशारों पर नाचने वाले मीडिया की रपटों के पीछे छिपा है। इस दौरान मैंने इस अनुभव को आभासी यथार्थ के खेल के रूप में देखना शुरू किया। यह सारी सच्चाई बेहद ख़तरनाक, अराजक और ज़हन-ओ-दिमाग़ को हिला देने वाली थी। सच बात तो यह है कि हमें जितना बताया गया था यथार्थ उससे कहीं ज़्यादा पुरपेंच और जटिल था। हमने वहाँ जो देखा उसे मज़ाक में "ग्रांड थेप्ट ऑटो : बगदाद" कहना हमें ज़्यादा मुनासिब लगा। बग़दाद का सारा माहौल इतनी सारी घटनाओं और कहानियों से भरा हुआ था। हमें वहाँ जो-जो लोग मिले उनकी दास्तान भी बेहद दिलचस्प और मुख़्तलिफ़ थीं। एक ओर हमारी मुलाक़ात सद्दाम के समर्थक राणा से हुई और दूसरी तरफ अमेरीकी सेना के लेफ़्टीनेंट कर्नल नेट सेस्मन से हुई जो इन दिनों सुन्नी बहुल इलाक़े में विद्रोहियों के ख़िलाफ़ टेक्टिकल ऑपरेशन

की कमान संभाले हैं। एक दफ़ा हमने सेस्मन से पूछा कि इराक़ में रहना कैसा लगा रहा है। इस पर सेस्मन मुस्कुराए और कहा "मुझे लगता है जैसे कि मैं एक अति यथार्थवादी फ़िल्म के माहौल में जी रहा हूँ"। तो, बात यह है कि सिर्फ़ हम लोगों को ही इराक़ का माहौल अति यथार्थवादी और अजीब नहीं लग रहा था। ऐसे और भी लोग थे जिन्हें बग़दाद के हालात-ए-हाज़रा ग़ैर इंसानी महसूस होते थे।

और हाँ, रही बात मीडिया परिदृश्य की तो इराक़ की घटनाओं से यह ज़ाहिर होता है कि मीडिया किन ख़तरनाक हदों को छू चुका है। अमेरीकी आक्रमण के बाद इराक़ में मीडिया ने महज़ युद्ध के नए नियमों को दर्ज करने के अलावा और कुछ नहीं किया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि मीडिया इराक़ के आम नागरिक की बात न करके सीधे-सीधे अमरीकी प्रतिष्ठान की गोद में जा बैठा है। और वह सब कुछ अमेरीकी मंशा के ज़ाविए से पेश कर रहा है। उसमें आम आदमी के दुःख, ज़िल्लत और तबाही की कोई गूँज सुनायी नहीं देती। आख़िरी बार आपने इराक़ के किसी नागरिक को टेलीविज़न पर अपनी बात कहते हुए कब सुना था? मुख्यधारा के मीडिया में क्या ऐसा कोई वाक़या याद पड़ता है? इस समूचे घटना प्रवाह में मीडिया इतना संकीर्ण और जातीयतावादी रहा है कि मुझे ख़बर तैयार करने वाले प्रोड्यूसरों और संपादकों की संवेदनशीलता पर तरस आता है। क्या उनके दिमाग़ में एक बार भी यह बात नहीं आयी कि इन वृतांतों में इराक़ की जनता क्यों ग़ायब है?

जहाँ तक इस अनुभव से युद्ध के बारे में मेरी धारणा और मान्यता बदलने की बात है। इस बारे में मैं सिर्फ़ इतना ही कहना चाहूँगा कि जिस क्षण मैंने जॉर्डन जाने वाले हवाई जहाज़ के अन्दर क़दम रखा उसी क्षण युद्ध के बारे में मेरी सोच बदल गयी। प्रगतिशील सामाजिक आन्दोलन के दायरों से जुड़े लोगों की तरह मैं भी जंग के ख़िलाफ़ था। लेकिन मैं युद्ध की मुख़ालिफ़त सिर्फ़ इसलिए नहीं कर रहा था कि सद्दाम हुसैन को क्यों हटाया जा रहा है, जंग की बाबत मेरा गुरेज़ इस बात को लेकर ज़्यादा था कि सद्दाम के ख़िलाफ़ वही लोग जंग की वकालत कर रहे थे जो एक ज़माने में उसके साथ व्यवसाय किया करते थे और जिन्होंने उस दौर के दमन और ज़ुल्म पर चुप्पी साध रखी थी। बुश और डिक चेनी - ये दोनों आदमी इस क़दर अनैतिक है कि अगर वे अच्छे से अच्छा और नैतिक से नैतिक काम भी कर के दिखा दें तो भी उनका समर्थन करने का मन नहीं करता क्योंकि आप यह बात जानते हैं कि इन लोगो की प्रतिबद्धता किसी भी चीज़ के प्रति नहीं है। लेकिन जब हमारी मुलाक़ात फ्रैंक अलबयाती से हुई तो इस जंग के बारे में हमारी धारणा ही बदल गयी। अलबयाती इराक़ में सद्दाम विरोधी आंदोलन से जुड़े थे। सद्दाम के सैनिक अलबयाती को मरा हुआ समझ कर छोड़ गए थे। उनकी जान अमेरीकी सैनिकों ने बचायी थी। अमेरीका जाने के बाद अलबयाती की एक नयी ज़िन्दगी शुरू हुई। मैं किसी भी युद्ध विरोधी आन्दोलनकारी को चुनौती देता हूँ कि वह इराक़ की सीमा पर बेतरह सिसकते और देश की सरज़मीं को चूमते अलबयाती को देखें और अगर उनमें हिम्मत हो तो बयाती से एक बार कहकर देखें कि अमेरीका ने आक्रमण कर के कोई ग़लत काम किया है। मेरी समझदारी जवाब दे चुकी थी। और जैसे-जैसे हम बयाती की भावनाओं को दर्ज करते यानी परिवार और देश में उसकी भावनात्मक वापसी को नज़दीक से देखते गए तो मेरे अन्दर द्वंद्व, बेबसी और एक तरह की धुंध-सी जड़ जमाने लगी। सीधे कहूँ तो मैं इस लायक़ नहीं रह गया था कि इस मुद्दे पर सीधे तौर पर कोई बात कह सकूँ। यह मेरे लिए बहुत गहरा और हृदय विदारक अनुभव था।

यह बात बेशक सही है कि बयाती का 'आज़ाद' इराक़ में लौटना अमेरीका के लिए ख़ुद को सही साबित करने का एक ज़रिया भर है। इससे अरब ज़मीन पर उसके क़दमों के तले की मिट्टी और मजबूत ही होती है। यह बात सुन्नी बहुल क्षेत्र में अमेरीकी सैनिकों की मौजूदगी से और भी पुख़्ता होती है। जैसा कि आप जानते ही होंगे सारी लड़ाई का केन्द्र यही इलाक़ा है। यहाँ हमें कुछ रातें गुज़ारने का मौक़ा मिला। यहाँ का अनुभव भी मेरे लिए बहुत मायने रखता है। यहाँ हमारी मुलाक़ात सेना के कर्नल स्तर के अधिकारियों से लेकर निचले स्तर के कर्मचारियों तक से हुई। ये सभी लोग न केवल इराक़

की जनता को लेकर चिन्तित थे बल्कि लोगों के लिए उनके मन में बेहद दया और प्यार था। यहाँ बहुत से लोग ऐसे भी थे जिन्होंने साफ़ तौर पर बताया कि इराक़ की जनता के ख़िलाफ़ वे नही लड़ना चाहते बहुत सारे ऐसे थे जिन्होंने सिर्फ़ इस लिए नाम लिखा लिया था कि इसके आधार पर उन्हे कॉलेज में दाख़िला मिल सके। इन तमाम लोगों में जो एक बात समान थी वह यह कि उन्हें इस बात का गर्व था कि वे स्कूल और अस्पताल जैसी ज़रूरी सुविधाएँ खड़ा करने में शामिल हैं। और उन्हें इस बात का गर्व होना भी चाहिए। दरअसल, ये लोग खुद समाज के ऐसे वर्ग से आते हैं जो बहुत सम्पन्न और खुशहाल नहीं है। यही वजह है कि वे इराक़ी जनता की दिक्क़तों और अभावों को समझ सकते हैं। ये लोग सम्पन्न नहीं हैं लेकिन इनकी प्रतिभा किसी से कम नहीं है। एक अन्य मुलाक़ात में अफ़्रीकी-अमेरीकी टैंक कमांडर हालिस ने युद्ध की पोल खोलते हुए इसकी तुलना स्टार ट्रेक और मनुष्य व मशीनों के युद्ध से की। हालिस की बात दिमाग़ और ज़हन के दरवाज़े खोल देने वाली थी। लेकिन मुझे सबसे ज़्यादा आश्यर्च तब हुआ जब हालिस ने बताया कि अमेरीकी प्रशासन को जंग सही ठहराने के लिए झूठ का सहारा क्यों लेना पड़ रहा है। हालिस के मुताबिक़ "आप जंग में मारे गए सैनिकों की माताओं को यह नहीं कह सकते कि उनके बेटों की जान अमेरीकी जीवन शैली को बचाने के लिए गयी है। आप उनसे यह नहीं कह सकते कि आपके बेटे इराक़ इसलिए ले जाए गए थे कि अमेरीका को अपने वैश्विक हितों को मजबूत करना था। आपको उन्हें यही बताना पड़ता है कि दरअसल युद्ध एक आदर्श के लिए लड़ा जा रहा है और ऐसा हमेशा ही होता आया है। हर युद्ध के पीछे इसी तरह की दलील दी जाती जा रही है। लेकिन हम यह बात बख़ूबी जानते हैं कि हम यह युद्ध आर्थिक लाभ के लिए लड़ रहे हैं और ऐसे हमें करना भी चाहिए। स्थिति साफ़ है या तो हम लाभ लेंगे या फिर वे। यह फ़ला-फ़ेल और बिग मैक के बीच की जंग है और इस जंग में जान देना अच्छी बात है।"

मेरे लिए इराक़ की यात्रा मनुष्य की अंदरुनी दया, करुणा और मानवता से रू-ब-रू होने का अवसर था। यह एक ऐसा अनुभव था जहाँ मैंने महसूस किया कि लड़ाई और विश्वासघात के चौतरफ़ा माहौल में भी इन्सानियत ज़िंदा रहती है। मेरी हर मुलाक़ात से यह अहसास और पुख़्ता हुआ है। इराक़ में जिस किसी से भी मिला उसके अन्दर इन्सानियत का यही अहसास मौजूद था। सद्दाम का कट्टर से कट्टर समर्थक भी यह बात नहीं कह सकता कि सद्दाम एक अच्छा या दयालु नेता है। लेकिन साथ ही हर एक व्यक्ति यह बात भी कहता है कि इराक़ पर हमला करते हुए अमेरीका ने एक बार भी यह साफ़ नहीं किया कि युद्ध क्यों लड़ा जा रहा है। और अन्त में झूठ कितना भी बड़ा हो, कितने भी महीन ढंग से बोला गया हो उसकी फ़सल झूठ के पैरोकारों को काटनी ही पड़ती है।

अनुवाद: नरेश गोस्वामी